बंगाल साहित्य सृजन और संस्कृति का दस्तावेज

कृत्तिवास 39

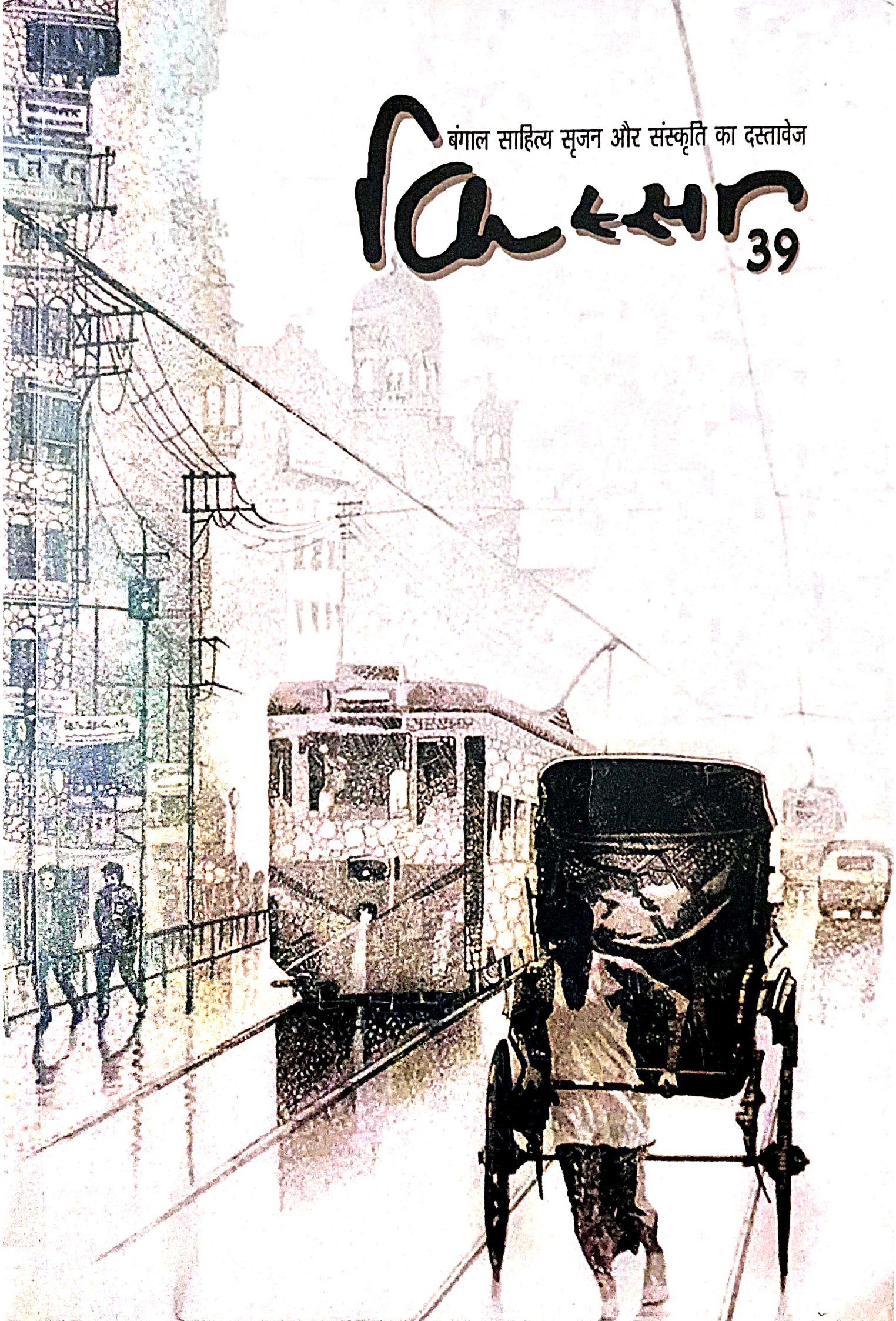

वर्ष-12, अंक-39 (अक्टूबर-दिसम्बर, 2024)

किस्सा

समकालीन कथा-साहित्य सृजन मंच

संस्थापक सम्पादक
शिव कुमार 'शिव'

सम्पादक
अनामिका 'शिव'

प्रबंध सम्पादक
मीनाक्षी सिंघानियां

आवरण-चित्र (साभार)
इंटरनेट से

चित्रांकन (साभार)
इंटरनेट से

कार्यालय सहायक
रामजी प्रसाद सिंह

अक्षर संयोजन
शकील हाशमी

प्रकाशक
सुधा स्मृति ट्रस्ट, भागलपुर

मुद्रक
रुचिका प्रिंट्र्स, दिल्ली-110032

सहयोग राशि
रुपये 125/-मात्र
(रजिस्ट्री द्वारा भेजे जाने पर रुपये 22/-अतिरिक्त)

सम्पादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय
मंजु विला, मारवाड़ी व्यायामशाला के बगल वाली गली, खरमनचक रोड, भागलपुर-812001
दूरभाष : 0641-2302080/2302021
मोबाइल : 09473032333 (प्रकाशक), 07488141730 (सम्पादक)
ईमेल : kissapatrika@gmail.com ■ **वेबसाइट :** www.kissapatrika.com

सम्पादन-प्रकाशन पूर्णतः अवैतनिक-अव्यावसायिक।
पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवादास्पद मामले भागलपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

इस अंक में

सम्पादकीय

अपनी वात/ अनामिका 'शिव'/ 3

उपन्यास अंश

मास्टर वोस 4 : लाइफ इन ए वेटिंग रूम/ अलका सरावगी/ 5

मुझको भी तो लिफ्ट करा दे/ डॉ. अभिज्ञात/ 14

कहानी

चुका नहीं हूँ मैं अभी/ महावीर राजी/ 24

एक नई जिन्दगी/ रविशंकर सिंह/ 33

दो औरतें/ उमा झुनझुनवाला/ 40

काल-कथा उर्फ जहाँआरा का इत्र/ राकेश कुमार त्रिपाठी/ 44

माँ का प्रेम/ शर्मिला जालान/ 56

लघुकथा

सो तो था/ मार्टिन जॉन/ 62

विरासत

काबुलीवाला/ रविन्द्रनाथ टैगोर/ 63

महेश/ शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय/ 69

संस्मरण

कोलकाता के कवि प्रकाश की याद/ निशांत/ 77

आलेख

नगरों के अन्दर कैद एक महानगर : कलकत्ता (अब कोलकाता)/ सुधा अरोड़ा/ 88

वंगाल के हिन्दी साहित्यकार : कल, आज और कल/ अरुण होता/ 95

कलकत्ता में हिन्दीभाषियों का इतिहास : बड़ा बाजार के विशेष सन्दर्भ में/ हितेंद्र पटेल एवं शत्रुघ्न काहार/ 107

सर राजेन्द्र नाथ मुखर्जी : आधुनिक भारत के विश्वकर्मा/ रचना सरन/ 117

साक्षात्कार

विचार हमेशा यात्रा में होते हैं/ डॉ. शंभुनाथ से साधना अग्रवाल की बातचीत/ 119

फेसबुक वॉल से/ 125-128

ममता कालिया, लालिमा वर्मा, प्रकाश देवकुलिश, जीवन सिंह, प्रीति सिन्हा, महावीर राजी, कुमार विजय गुप्त, जया आनन्द, प्रगति गुप्ता, चितरंजन भारती

हितेंद्र पटेल एवं शत्रुघ्न काहार

कलकत्ता में हिन्दीभाषियों का इतिहास बड़ा बाजार के विशेष सन्दर्भ में

कोलकाता सिर्फ बांग्लाभाषियों का ही शहर नहीं था। 1921 की जनगणना से पता चलता है कि कलकत्ता के 47 प्रतिशत निवासियों की मातृभाषा बंगाली नहीं थी।

1951 में, कलकत्ता औद्योगिक क्षेत्र, जिसमें शहर और आसपास के औद्योगिक इलाके शामिल थे, की जनसंख्या लगभग 46 लाख थी, जिसमें लगभग 11.5 लाख हिन्दी-उर्दू भाषी थे। कलकत्ता में 8.5 लाख से अधिक लोग बिहार और उत्तर प्रदेश में जन्मे थे, जबकि 40,000 से अधिक लोग राजस्थान से थे। 'हिन्दुस्तानियों' की वास्तविक संख्या इससे भी अधिक होने की सम्भावना थी, क्योंकि जनगणना में सभी को शामिल नहीं किया गया था।

यह लेख इन गैर-बंगाली भाषी समुदायों के इतिहास के बारे में है। यह व्यापारियों, उद्यमियों, श्रमिकों, और ब्रिटिश शासन के खिलाफ राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान राजनीतिक प्रतिभागियों के रूप में उनकी महत्वपूर्ण भूमिकाओं पर भी प्रकाश डालता है।

बड़ा बाजार, जिसे होलसेल मार्केट के नाम से भी जाना जाता है, कलकत्ता का एक विशिष्ट क्षेत्र माना जाता था, जहाँ मुख्य रूप से गैर-बंगाली ('अबंगाली') समुदाय रहते थे। एक विद्वान ने उल्लेख किया है कि आधुनिक बड़ा बाजार की स्थापना मारवाड़ियों ने 1738 में की थी। यह क्षेत्र 'हिन्दुस्तानी कलकत्ता' के रूप में प्रसिद्ध हो गया, जो मारवाड़ी और बिहारी समुदायों का घर था, जिन्हें सामूहिक रूप से 'हिन्दुस्तानी' या 'देशवाली' कहा जाता था।

हिन्दुस्तानी कलकत्ता, जिसमें व्यापारी, मजदूर और विभिन्न भूमिकाओं में कार्यरत कर्मचारी शामिल थे, सिर्फ बड़ा बाजार तक सीमित नहीं था, बल्कि हावड़ा, खिदिरपुर-मटियाबुर्ज और बैरकपुर जैसे क्षेत्रों तक फैला हुआ था। हालांकि, बड़ा बाजार का विशेष महत्व था, जो राजस्थान, गुजरात, पंजाब, संयुक्त प्रांत और बिहार के लोगों को आकर्षित करता था। ये लोग व्यापारी, श्रमिक, कुली, विक्रेता, दुकानदार, शिक्षक और हिन्दी पत्रकार के रूप में आजीविका की तलाश में आते थे, जिससे शहर के जीवंत सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में महत्वपूर्ण योगदान होता था।

जनगणना रिपोर्टें बड़ा बाजार, जिसे वार्ड क्रमांक 7 के रूप में जाना जाता है, के बारे में सीमित जानकारी प्रदान करती हैं। 1931 में इसकी जनसंख्या लगभग 18,000 थी, जबकि उस समय कलकत्ता की कुल जनसंख्या लगभग 15 लाख थी। 1931 की जनगणना में कलकत्ता में 4,023 मारवाड़ी, 5,249 अग्रवाल और 9,100 बनिए दर्ज किए गए थे, और 1961 तक यह संख्या बढ़कर 36,000 हो गई। हालांकि, मारवाड़ी समुदाय इन आंकड़ों को अविश्वसनीय मानते थे और

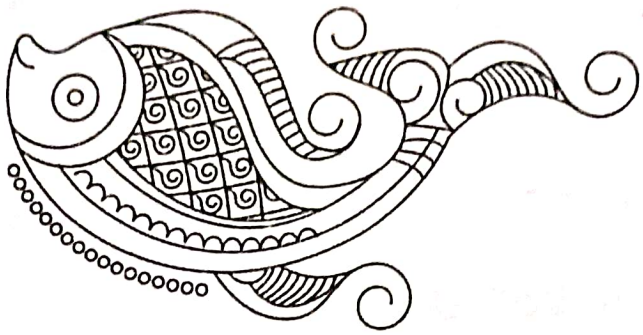

उनकी जनसंख्या का अनुमान पाँच से छह लाख के बीच लगाया गया था। 1994 के एक लेख में बताया गया है कि मारवाड़ी महानगर की आबादी का लगभग 15 प्रतिशत हिस्सा बनाते हैं। यूपी और बिहार की आबादी को जोड़ने से कलकत्ता में गैर-बंगाली लोगों की महत्वपूर्ण उपस्थिति को और बल मिला। 1921 की एक सरकारी रिपोर्ट में ग्रेटर कलकत्ता में बिहार से 495,714 और यूपी से 328,398 लोगों का उल्लेख किया गया था।

कलकत्ता की हिन्दीभाषी दुनिया को दो विपरीत दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। पहला दृष्टिकोण समृद्ध और व्यावसायिक रूप से कुशल मारवाड़ियों और बिहार के गरीब हिन्दुस्तानी श्रमिकों के बीच विभाजन को उजागर करता है, जो मुख्य रूप से शारीरिक श्रम करते थे। इस दृष्टिकोण में मारवाड़ियों को अक्सर चालाक और 'भारतीय यहूदियों' के रूप में चित्रित किया जाता है, जो पैसे कमाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। ऐसे रूढ़िवादी विचारों ने हिन्दुस्तानियों के प्रति मध्यवर्गीय भद्रलोक की धारणा को आकार दिया है। हाल ही में, मारवाड़ी लेखकों के कुछ उपन्यासों ने प्रबुद्ध बंगाली समुदाय के साथ समानताएँ दर्शाते हुए, मारवाड़ियों और बिहारियों के बीच एक अंतर बनाया है और कोशिश की है कि दोनों को थोड़ा अलग-अलग रखकर विचार किया जाए।

दूसरा दृष्टिकोण, जो मारवाड़ी स्वामित्व वाले प्रकाशनों में काम करने वाले यूपी और बिहार के हिन्दी लेखकों द्वारा समर्थित है, कलकत्ता की हिन्दी दुनिया को एक साथ रखने की कोशिश करता है। इस दृष्टिकोण में अमीर और गरीब दोनों मारवाड़ियों को बाकी के हिन्दुस्तानी लोगों के साथ शामिल किया गया है। हैरिसन रोड पर बजरंगलाल कन्हैयालाल झुनझुनवाला द्वारा वर्णित एक इमारत इस सामुदायिक जीवन का उदाहरण है, जहाँ विभिन्न पृष्ठभूमियों मारवाड़ी, हलवाई, मिर्जापुरी, वैश्य और ब्राह्मण के 18 परिवार एक छोटी-सी जगह साझा करते थे, जो इन समुदायों के परस्पर जुड़े जीवन को दर्शाता है।

बड़ा बाजार में, मारवाड़ी युवा 1898 में मारवाड़ी एसोसिएशन के गठन के साथ सामाजिक और संगठनात्मक प्रयासों में सक्रिय हो गए थे। 1880 के दशक के मध्य में, मारवाड़ियों ने सामाजिक पहल शुरू की, और 1885 में कलकत्ता पिंजरपोल सोसाइटी का गठन संगठनात्मक एकता की उनकी इच्छा का एक प्रारम्भिक उदाहरण था। इसके बाद वैश्यमित्र सभा सहित कई अन्य संघों का गठन किया गया। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक, मारवाड़ी सामाजिक कार्यों में तेजी से शामिल होने लगे थे और आर्थिक सहयोग भी देने लगे थे। उदाहरण के तौर पर, भारत धर्म महामंडल के संस्थापक पंडित दीनदयालु शर्मा ने अपने धर्म व्याख्यानों के माध्यम से बड़ा बाजार में 15,000 रुपये जुटाए। मारवाड़ी संघ ने राजनीतिक परियोजनाओं का समर्थन करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें विभाजन आन्दोलन के दौरान उनका सहयोग माँगा गया था।

1880 के दशक के बाद से, कलकत्ता का हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र जीवंत हो गया, जो उभरते राष्ट्रवादी भावनाओं को दर्शाता है, हालांकि इस पहलू को इतिहासकारों द्वारा काफी हद तक अनदेखा किया गया है। *भारत मित्र* (1878), *सार सुधा निधि* (1879) और *उचित वक्ता* (1880) जैसे

हिन्दी समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय चिन्ताओं को प्रमुखता से उठाया। एक साहित्य इतिहास लेखक ने उल्लेख किया कि हिन्दी को एक सम्भावित राष्ट्रीय भाषा के रूप में देखा जाने लगा था। इसमें बंगाली लेखकों ने इस बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेंदु हरिश्चंद्र और रामदीन सिंह जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व बंगाली बुद्धिजीवियों से प्रेरित थे, जबकि भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार में हिन्दी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शुरुआती हिन्दी लेखक और पत्रकार सरकार समर्थक और रूढ़िवादी नजर आते थे परन्तु 1890 के दशक तक आते-आते उनके लेखन में राष्ट्रवादी विचारों का समर्थन बढ़ने लगा था। माधव मिश्र और सखाराम देउस्कर जैसे लेखकों ने बाल गंगाधर तिलक के अभियानों का खुलकर समर्थन किया। सबसे उल्लेखनीय आलोचनाओं में से एक बालमुकुंद गुप्त की थी, जिन्होंने लॉर्ड कर्जन को साहसिक और खुले पत्र भेजने के लिए 'भारत मित्र' का उपयोग किया। अपने पत्रों में, गुप्त ने भारत की स्थिति और लोगों के साथ ब्रिटिश व्यवहार के बारे में कर्जन की गलत धारणा की आलोचना की और इस बात पर जोर दिया कि भारत को उन्नति और समृद्धि के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है।

1907 में, नृसिंह ने स्वराज के पक्ष में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने यह तर्क दिया कि केवल स्वतन्त्रता ही भारत और उसके लोगों के शोषण को समाप्त कर सकती है। उस समय के एक प्रमुख व्यक्ति अंबिका प्रसाद बाजपेयी ने औपनिवेशिक उत्पादों के बहिष्कार का आह्वान किया और राष्ट्रीय सम्मान की पुनः प्राप्ति के लिए दृढ़ता का पक्ष लिया। बाजपेयी जैसे हिन्दी पत्रकारों ने अपने राष्ट्रवाद को अपनी धार्मिक मान्यताओं के साथ मिलाया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि एक व्यक्ति एक साथ एक पवित्र हिन्दू और निडर राष्ट्रवादी हो सकता है। बाजपेयी की यात्रा उनके राजनीतिक जागरण को दर्शाती है। वे हिन्दी प्रकाशनों के साथ काम करने से राजनीतिक सक्रियता की ओर बढ़े, जिसमें अरविंद घोष द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज में अध्यापन और बाद में भारत मित्र का सम्पादन शामिल था। अखबार को सफल बनाने में उनके अथक परिश्रम ने अन्ततः उनके स्वास्थ्य पर असर डाला। 1920 में, वाजपेयी ने राष्ट्रवादी दैनिक स्वतन्त्र की शुरुआत की, और अपनी मृत्यु तक अपने सम्पादकीय और राजनीतिक योगदान को निरन्तर जारी रखा।

पंडित माधव प्रसाद मिश्र (1871-1907), एक तिलकपंथी हिन्दी पत्रकार थे, जो बनारस में *सुदर्शन* और बाद में कलकत्ता में *वैश्योपकारक पत्रिका* के सम्पादक रहे। यह पत्रिका दो साल तक प्रकाशित हुई और बाद में मिश्र की राजनीतिक और धार्मिक व्यस्तताओं के कारण बन्द हो गई।

गीता प्रेस के संस्थापक हनुमान प्रसाद पोद्दार ने स्वदेशी आन्दोलन के दौरान राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह कांग्रेस के गरमपंथी दल में शामिल हो गए और बाद में मारवाड़ी युवकों की एक सीक्रेट सोसाइटी में शामिल हो गए, जिसकी चार उप-समितियाँ थीं, जो सामाजिक सुधार, युवा प्रशिक्षण, राजनीति और क्रान्तिकारी गतिविधियों का समर्थन करने पर केन्द्रित थीं। यह समूह युवाओं को हथियार चलाने और शारीरिक फिटनेस का प्रशिक्षण देता था और क्रान्तिकारी पुस्तकें भी प्रकाशित करता था। इस समाज द्वारा प्रकाशित पहली गीता कलकत्ता में छपी थी, जिसमें भारत माता को तलवार के साथ चित्रित किया गया था, जिसके कारण पुलिस ने छापा मारा और प्रतियाँ जब्त कर लीं। गीता की शिक्षाओं को फैलाने के लिए पोद्दार का आजीवन समर्पण जयदयाल गोयनका के साथ उनके सहयोग से और मजबूत हुआ।

मारवाड़ी युवाओं के बीच दो गुट थे—

सरकार समर्थक चपकानिया समूह और राष्ट्रवादी सुधारवादी समूह, जिसमें उग्रवादी आन्दोलनों में सक्रिय सदस्य भी शामिल थे।

मारवाड़ी युवकों में उग्रवाद और राजनीतिक सक्रियता का उदय बंगालियों की राजनीतिक गतिविधियों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। बंगाली कार्यकर्ताओं और उग्र राष्ट्रवाद पर आधारित किताबों से प्रभावित हनुमान प्रसाद पोद्दार ने रवींद्रनाथ टैगोर, ब्रह्मबांधव उपाध्याय और गिरीशपति काव्यतीर्थ जैसे प्रमुख व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखे। उन्होंने रामकुमार गोयनका और राधामोहन गोकुल जैसे हिन्दी लेखकों के साथ भी सम्पर्क बनाए रखा।

इस दौरान, मारवाड़ी सहायक समिति और हिन्दू सभा जैसे संगठनों ने बैठकें आयोजित कीं, जिनमें भाषणों के बाद थैली उपहार के रूप में प्रदान किए गए। जब गांधी दक्षिण अफ्रीका से लौटे, तो हिन्दू सभा ने कलकत्ता में एक ऐसी ही बैठक आयोजित की, जिसमें पोद्दार ने सचिव के रूप में कार्य किया। उसी समय, मदन मोहन मालवीय को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एक बड़ा दान प्राप्त हुआ। 1912 में, पोद्दार का सम्बन्ध ढाका में माँ आनन्दमयी से बढ़ा और वे जतिंद्रनाथ दास की स्वदेशी बांधव समिति से जुड़ गए, जिसके कारण उनका सम्पर्क ढाका की अनुशीलन समिति के सदस्यों जैसे पुलिन बिहारी दास और बिपिन चंद्र गांगुली से हुआ।

20वीं सदी के दूसरे दशक में, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में बढ़ावा देने में बंगाली नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। पहला राष्ट्रभाषा सम्मेलन 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के दौरान आयोजित किया गया था, जिसकी अध्यक्षता अंबिका प्रसाद मजूमदार ने की थी। कलकत्ता में अगले सत्र में, महात्मा गांधी ने लोकमान्य तिलक और सरोजिनी नायडू जैसे नेताओं द्वारा अंग्रेजी में बोलने पर चिन्ता जताई। इसके परिणामस्वरूप, तिलक ने अगली बैठक में हिन्दी में बोलने का विकल्प चुना, जो एक बड़ी सफलता थी।

दिनाजपुर में, चीनी राम अग्रवाल, मगराज अग्रवाल और तुलाराम भूतोरिया जैसे कई मारवाड़ी व्यक्ति राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हुए। पुलिस रिकॉर्ड में उन्हें 'राजनीतिक-अपराधियों' की सूची में डाला गया। होम रूल लीग में कलकत्ता और उसके आसपास के जिलों के कई मारवाड़ी राष्ट्रवादी भी थे, जिनकी एक शाखा बड़ा बाजार में स्थापित की गई थी। हालाँकि अधिकांश मारवाड़ी कांग्रेस के समर्थक थे, कुछ ने हिन्दू संगठनों का रुख किया। कलकत्ता के हिन्दी भाषी समुदाय के भीतर के इस आंतरिक संघर्ष को छविनाथ पांडे की आत्मकथा में दर्शाया गया है, जो एक सफल लेखक और पत्रकार थे, और जिन्होंने कलकत्ता दंगों के बाद हिन्दू संगठनों से जुड़ने का निर्णय लिया।

1920 के दशक की शुरुआत में, राजधानी दिल्ली स्थानान्तरित होने के बावजूद कलकत्ता हिन्दी लेखकों के लिए एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा। आगा हश्र कश्मीरी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, बाजपेयी, शिवपूजन सहाय और अग्रवाल जैसे लेखकों ने नाटक, कविता, कहानी, भावनात्मक निबन्ध और विज्ञापनों के माध्यम से राजस्व सृजन में नवाचारों के साथ हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1920 के दशक में, कलकत्ता में हिन्दी पत्रकारिता ने उल्लेखनीय वृद्धि देखी।

1921 में, पंडित झाबरमल्ल शर्मा ने कलकत्ता समाचार की शुरुआत की, और घनश्याम दास बिड़ला ने कट्टरपंथी अग्रसर का प्रकाशन शुरू किया। 1924 में, महादेव सेठ ने एक और उच्च गुणवत्ता वाला अखबार मतवाला निकालना शुरू किया। अन्य उल्लेखनीय प्रकाशनों में 1925 में श्रीकृष्ण सन्देश (पंडित लक्ष्मी नारायण गर्दे द्वारा सम्पादित), सेनापति (1926), और सरोज (1928) शामिल थे। इस अवधि के सबसे

महत्वपूर्ण पत्र हिन्दू पंच (ईश्वरी प्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित) और विशाल भारत (पंडित रामानंद चट्टोपाध्याय और पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा प्रकाशित) थे। 1929 में, बैजनाथ केडिया ने सेवक की शुरुआत की। इसके अतिरिक्त, रेलवे समाचार, स्वतन्त्र और लोकमान्य जैसे पत्र भी कलकत्ता से ही निकले।

कलकत्ता की हिन्दी भाषी आबादी में बढ़ती राजनीतिक जागरूकता इन अखबारों के लेखन में स्पष्ट रूप से दिखाई दी। 1925 में, नंद किशोर अग्रवाल ने मारवाड़ी अग्रवाल के लिए एक लेख में यह युक्ति पेश की कि राष्ट्रवाद और स्वतन्त्रता की इच्छा आधुनिक शिक्षा द्वारा पेश की गई विदेशी अवधारणाएँ नहीं थीं, बल्कि भारतीय जातीय पहचान को प्रस्तुत करती हैं। यह पहचान यूरोपीय लोगों की जातीय पहचान की तरह अपनी भाषा, संस्कृति और स्वतन्त्रता के प्रति गर्व में समाहित थीं।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद, बड़ी संख्या में हिन्दी पाठकों द्वारा संचालित प्रेस की शक्ति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, महात्मा गांधी के आगमन ने कलकत्ता में हिन्दी पत्रकारिता के सबसे गहन चरण को चिह्नित किया, क्योंकि प्रेस अब जनता को सूचित करने और सरकार के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए आवश्यक हो गया था। कलकत्ता में दंगों से विशेष रूप से प्रभावित मारवाड़ी समुदाय ने अपनी आवाज के रूप में हिन्दी प्रेस की आवश्यकता को पहचाना।

इस अवधि के प्रमुख हिन्दी पत्रकारों और लेखकों में शिवपूजन सहाय, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', इलाचंद जोशी, भगवती चरण वर्मा और अन्य शामिल थे, जिन्होंने हिन्दी साहित्य और प्रेस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कलकत्ता के हिन्दी साहित्य जगत में आगा हश्र कश्मीरी (नाटक), निराला (कविता), नवजादिकालाल श्रीवास्तव और ईश्वरीप्रसाद शर्मा (व्यंग्य) और अंबिकाप्रसाद बाजपेयी और शिवपूजन सहाय (गम्भीर लेखन) का योगदान प्रमुख था। इन लेखकों ने गांधी के राजनीतिक आन्दोलन का समर्थन किया, जबकि तिलकवादी दौर के विपरीत, जहाँ सरकार विरोधी भावनाएँ कम व्यक्त की जाती थीं। विशेष रूप से, मतवाला पत्रिका ने एक सम्पादकीय प्रकाशित किया, जिसमें पाठकों से गांधी और स्वराज का समर्थन करने का आग्रह किया गया। हिन्दी लेखक अपने आध्यात्मिक लेखन में भी राष्ट्रवाद की ओर मुड़ गए। अपनी पत्नी से प्रभावित निराला ने स्वामी माधवानंद के साथ समन्वय पत्रिका में काम किया, और शिवपूजन सहाय द्वारा सम्पादित मारवाड़ी सुधार भी उसी प्रेस से प्रकाशित हुई। हरिऔध, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और 'उग्र' जैसे प्रमुख हिन्दी लेखकों के योगदान से मतवाला एक अग्रणी पत्रिका बन गई।

मारवाड़ी समुदाय के भीतर पारम्परिक (चपकनिया) और सुधारवादी समूहों के बीच तनाव 20वीं सदी की शुरुआत में गहरा गया, खासकर विधवा पुनर्विवाह और अन्य सामाजिक सुधारों के मुद्दों पर। सुधारवादी समूहों ने पुरानी प्रथाओं को चुनौती देने के लिए अग्रवाल महासभा की स्थापना की और सामाजिक बुराइयों, जैसे कि कम उम्र की लड़कियों की शादी बुजुर्ग पुरुषों से करना और मृत्यु के बाद महंगे अनुष्ठान के खिलाफ संघर्ष किया। इन सुधारकों ने विधवा पुनर्विवाह की वकालत की और अन्य कुप्रथाओं के खिलाफ प्रत्यक्ष कदम उठाए, जैसे कि जबरन विवाह समारोहों से लड़कियों को हटाना और महंगे मृत्यु अनुष्ठानों का विरोध करना।

1919 तक कुछ सुधारवादियों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए किताबें प्रकाशित करना शुरू किया। इनमें बजरंगलाल कन्हैयालाल झुनझुवाला की मारवाड़ी सुधार शामिल थी, जो विधवाओं की दुर्दशा पर केन्द्रित थी। झुनझुवाला ने 1911 की जनगणना के आंकड़ों पर प्रकाश डाला, जिसमें बताया गया कि हर छह महिलाओं

में से एक विधवा थी, और इनमें से कई छोटी लड़कियाँ थीं। उन्होंने समाज में महिलाओं पर रखी गई कठोर अपेक्षाओं की आलोचना की और परम्परा को सामाजिक बुराइयों की जड़ वताया।

1920 से पहले वड़ा वाजार में कांग्रेस का कोई गठन नहीं हुआ था। जमनलाल वजाज ने कांग्रेस को इस क्षेत्र में लाने और धनी मारवाड़ी समुदाय के बीच स्वीकार्यता प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वड़ा वाजार 'जिला कांग्रेस' की स्थापना हुई। पंडित अंविका प्रसाद वाजपेयी और पद्मराज जैन अध्यक्ष और सचिव वनाए गए। महात्मा गांधी ने 1921 में इसका औपचारिक उद्घाटन किया। इसके पहले, मारवाड़ी युवा लॉज, समाचार पत्र, पुस्तकालय और स्कूल जैसी सामाजिक पहलों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते थे। 1920 के वाद, गांधी की यात्राओं और भाषणों, जिनमें मारवाड़ी महिलाओं को पर्दा छोड़ने का उनका सन्देश भी शामिल था, से प्रेरित होकर मारवाड़ी कांग्रेस की राजनीति में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इससे वड़ा वाजार में युवा मारवाड़ियों के बीच राजनीतिक जागरूकता और रुचि में वृद्धि हुई, जिसमें प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, महावीर प्रसाद पोद्दार और अन्य लोग प्रमुख रूप से शामिल थे।

1926 में विधवा पुनर्विवाह को लेकर सुधारवादी और रूढ़िवादी मारवाड़ियों के बीच एक वड़ा संघर्ष उभरकर सामने आया। रूढ़िवादियों के कड़े विरोध के वावजूद, हावड़ा की विधवा जानकी देवी ने छज्जूराम चौधरी के चौक पर आयोजित एक समारोह में झरिया के नागरमल लीला से विवाह किया। इस आन्दोलन के प्रमुख समर्थकों में वाल कृष्ण मोहता, उनकी पत्नी और प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका शामिल थे। 26 नवम्बर, 1927 को लुधियाना में एक और विधवा पुनर्विवाह हुआ, जिसने वाराणसी के राष्ट्रवादी अखवारों में विशेष ध्यान आकर्षित किया। लुधियाना और कानपुर के कई मारवाड़ियों ने इसका समर्थन किया, जवकि रूढ़िवादी छपकानिया मारवाड़ियों ने इसका विरोध किया। इसके परिणामस्वरूप, पद्मराज जैन, भागीरथ कनोडिया और अन्य सुधारवादी मारवाड़ियों को मारवाड़ी पंचायत द्वारा वहिष्कृत कर दिया गया। पंचायत ने यह भी माँग की कि प्रभुदयाल और भागीरथ कनोडिया सुधारवादी खेमे को छोड़ दें, लेकिन उन्होंने इससे इनकार कर दिया। यह घटना कलकत्ता के मारवाड़ियों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ सावित हुई, जिसमें कई सुधारवादियों को आदर्श के रूप में देखा गया, जिन्होंने विदेशी वस्तुओं, अंग्रेजी संस्थाओं और अदालतों का विरोध किया।

सुधारवादी समूहों की प्रगतिवादिता को एक ही दृष्टिकोण से पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि कई ऐसे उदाहरण हैं जव विधवा पुनर्विवाह के प्रति उनका समर्थन नहीं था। उदाहरणस्वरूप, छविनाथ पांडे ने लिखा है कि जव डॉ. किशोरी लाल शर्मा ने एक विधवा से विवाह किया, तो सुधारवादी भी इससे असहज हो गए थे।

कलकत्ता में हिन्दीभाषी लोग तेजी से विभिन्न राजनीतिक लामवन्दी के रूपों में शामिल हो रहे थे, जिन्हें वे अपने राष्ट्रवादी प्रयासों के अनुरूप मानते थे। विशेष रूप से विश्व युद्ध के वाद का साहित्य, हिन्दीभाषी क्षेत्रों में, मुसलमानों द्वारा हिन्दू महिलाओं को ले जाने के वारे में चिन्ताओं को उजागर करता था। 1919 में, मारवाड़ी सुधारकों ने स्वीकार किया कि 1913 के दंगों के दौरान मारवाड़ी समुदाय गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ था, जिसमें वित्तीय नुकसान और मुस्लिम क्षेत्रों से महिलाओं के सफेद कपड़ों में ले जाने की परेशान करने वाली रिपोर्टें शामिल थीं। 1910 से पहले, हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के बीच सम्बन्ध अपेक्षाकृत सौहार्दपूर्ण थे, लेकिन 1910 में मारवाड़ियों को निशाना वनाकर किए गए दंगों के वाद तनाव की शुरुआत हुई। इसने एक वदलाव को दर्शाया, जिसमें मारवाड़ी समुदाय अपनी सुरक्षा और हितों के प्रति अधिक जागरूक

हो गया, और यह भावना अन्य हिन्दीभाषी समूहों में भी पाई जाती थी। उस समय के साम्प्रदायिक संघर्ष ने कलकत्ता में हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के बीच बढ़ते विभाजन को स्पष्ट किया।

1918 में, कलकत्ता के जूट मिल क्षेत्र में लगभग 3,00,000 कर्मचारी और उनके आश्रित थे, जिनमें अधिकांश यूपी और बिहार के हिन्दी-उर्दू भाषी थे। इन श्रमिकों का बंगाली समुदाय से सांस्कृतिक और भाषायी सम्बन्ध बहुत कम था, जिसके कारण बंगाली राजनेताओं की गैर-बंगाली श्रमिकों में सीमित रुचि थी। इस समय में साम्प्रदायिक तनाव में वृद्धि देखी गई, विशेष रूप से गोहत्या जैसे मुद्दों पर, जो विवाद का कारण बन गए थे। मुल्ला इनामुल हक के स्वामित्व वाले मुस्लिम प्रकाशन 'मोस्लेम हितशी हितोशी' ने मारवाड़ियों को शोषक के रूप में चित्रित किया, जिन्होंने गलत तरीके से लाभ कमाया, जिससे मारवाड़ी विरोधी भावनाओं को बढ़ावा मिला। इसके अतिरिक्त, 'कट्टरपंथी पैन-इस्लामिक पत्रकारों' के उदय ने हिन्दुओं और अंग्रेजों के खिलाफ नफरत को बढ़ावा दिया, विशेषकर गरीब मुसलमानों के बीच, जो पैन-इस्लामिक विचारों से गहरे प्रभावित थे और जो गैर-विश्वासियों के खिलाफ जिहाद का आह्वान करते थे।

सितम्बर 1918 तक, कलकत्ता में स्थिति अस्थिर हो गई, और 9 सितम्बर को दंगे भड़क उठे। भीड़ ने मारवाड़ी दुकानों और घरों को लूटा, और कई दंगाइयों के मारे जाने के बाद सेना को हस्तक्षेप करना पड़ा। अशान्ति खिदिरपुर में नखोदा मस्जिद के आसपास केन्द्रित थी, जो बाद में मानिकतला और गार्डन रीच जैसे क्षेत्रों में फैल गई। अगले दिन, मिल मजदूरों और चटगाँव के अशान्त मुस्लिम मजदूरों के एक समूह ने सैन्य चौकियों पर हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप कई लोग हताहत हुए। दंगों में मारवाड़ी विरोधी भावना के साथ-साथ ब्रिटिश विरोधी भावना भी थी। यह दिलचस्प था कि दंगाई मुख्य रूप से छोटे मुस्लिम व्यापारी, कारीगर और गाड़ीवान थे, न कि सबसे गरीब मुसलमान। दंगों के परिणामस्वरूप 36 मुस्लिम और 7 हिन्दू तथा मारवाड़ी मारे गए।

मैकफर्सन ने उल्लेख किया कि नवम्बर 1920 में असहयोग आन्दोलन को अपनाने से पहले, कलकत्ता में बड़े पैमाने पर आन्दोलन का नेतृत्व मुख्य रूप से देश के हिन्दुओं, मुसलमानों और मारवाड़ियों द्वारा किया जाता था, जबकि छोटे व्यापारी समुदायों द्वारा सड़कों और बस्तियों में गतिविधियाँ संचालित की जाती थीं।

कलकत्ता में हिन्दी भाषी युवकों द्वारा 1922 में गठित 'युवक सभा' 1918 के दंगों के परिणामस्वरूप ही उभरी। मारवाड़ी समाज के कार्यकर्ताओं ने सम्भावित मुस्लिम हमलों से बचाने के लिए युवाओं को आत्मरक्षा, खासकर लाठी (डंडे) का उपयोग करने की प्रशिक्षण देने की वकालत की। इन प्रशिक्षित युवाओं ने 1926 के दंगों के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें प्रभुदयाल, राधाकृष्ण नेवटिया और अन्य को हिन्दुओं की रक्षा करने का श्रेय दिया जाता है।

1924 के आसपास, हिन्दी भाषी सामाजिक नेताओं ने हिन्दू महिलाओं की रक्षा के लिए एक आश्रम स्थापित किया, जिनके बारे में माना जाता था कि उन्हें मुस्लिम गुंडों द्वारा पकड़ लिए जाने का खतरा था। आश्रम के एक सदस्य और कांग्रेस समर्थक छविनाथ पांडे ने अबला आश्रम की स्थापना और संयुक्त सचिव के रूप में अपनी भूमिका का उल्लेख किया। आश्रम के स्वयंसेवक रेलवे स्टेशन पर 24 घंटे निगरानी रखते थे और खतरनाक परिस्थितियों से भाग रही महिलाओं को बचाते थे। हालांकि, कई महिलाएँ मुस्लिम गुंडों और दलालों के हाथों में फँस गईं। इन महिलाओं को बचाने के लिए, उन्होंने हिन्दू गुंडों की मदद ली, जिन्होंने उन्हें आश्रम की सुरक्षा में लाने में सफलता प्राप्त की।

छविनाथ पांडे ने देखा कि 1924 तक

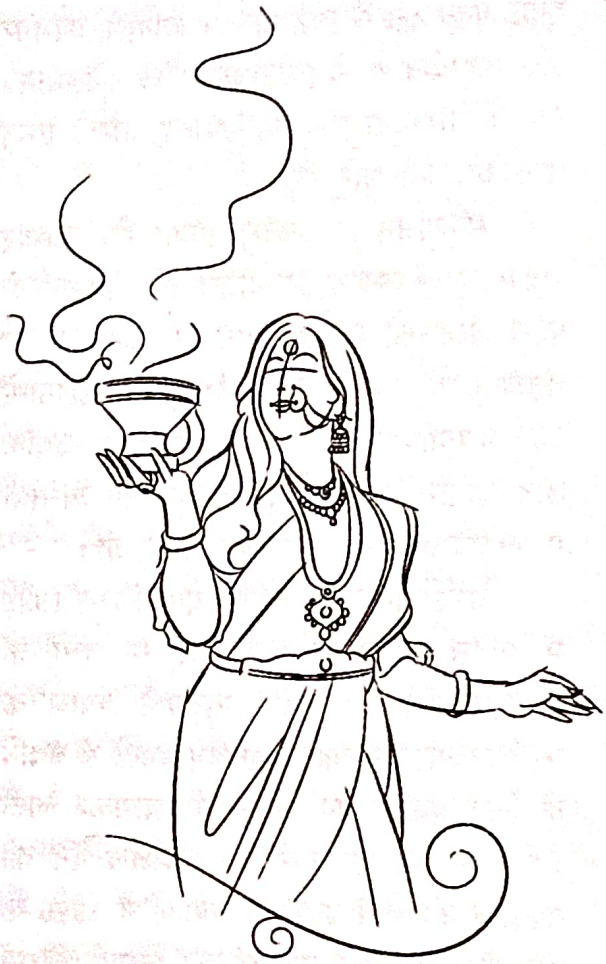

कलकत्ता में हिन्दू संगठन इतने संगठित और जागरूक हो गए थे कि 1914 के दंगों के विपरीत, जहाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं को हराया था, वे अव प्रभावी ढंग से जवाव देने में सक्षम थे। हिन्दू संगठनों में इस वृद्धि को सत्ता की गतिशीलता में वदलाव के एक प्रमुख कारक के रूप में देखा गया।

अबला आश्रम की कहानी कलकत्ता में हिन्दी भाषी लोगों की राजनीति में साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय विचारधाराओं के मिश्रण का उदाहरण है। आश्रम की स्थापना की पहल कांग्रेस के सदस्य प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका ने की, जिन्होंने जुगल किशोर बिड़ला के समर्थन से लिलुआ में हिन्दू अबला आश्रम की स्थापना की। आश्रम ने शुरू में कलकत्ता में एक घर किराए पर लिया और दो प्रमुख बड़ा बाजार नागरिकों, पद्मराज जैन और बालकृष्ण मोहता ने इसकी सफलता में योगदान दिया। प्रभुदयाल अध्यक्ष के रूप में कार्य करते थे, और जैन सचिव थे। आश्रम ने सत्तर हजार रुपये के वार्षिक वजट के साथ 300 हिन्दू महिलाओं को आश्रय प्रदान किया। इन महिलाओं को उनके परिवारों से फिर से जोड़ने के प्रयास किए गए और कुछ की शादी हैदरावाद जैसे दूर के स्थानों पर भी कर दी गई। वर्षों बाद भी, आश्रम प्रवन्धन की संतुष्टि के लिए इन महिलाओं की भलाई पर नजर रखी गई।

हालाँकि, आश्रम चलाना चुनौतियों से मुक्त नहीं था। निहित स्वार्थो ने इसकी गतिविधियों को बदनाम करने का प्रयास किया। बंगाली अखबार भग्न दूत ने आश्रम के धनी प्रवंधकों से पैसे ऐंठने की उम्मीद में अपमानजनक रिपोर्ट प्रकाशित की। जवाब में, हिम्मतसिंहका ने पुलिस में शिकायत दर्ज कराई और आरोपों को गलत साबित करने के लिए हैदराबाद से एक महिला को बुलाया। अखबार को माफी माँगने के लिए मजबूर होना पड़ा और अदालत ने 50,000 रुपये का मुआवजा देने का आदेश दिया।

1920 के दशक में, कलकत्ता के हिन्दी भाषी लोगों की राजनीति कांग्रेस और हिन्दू हितों की ताकतों के बीच फँस गई थी, दोनों पक्षों को विभिन्न राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से सम्बोधित किया गया था। जबकि ये दोनों प्रवृत्तियाँ सामान्य समय में शान्तिपूर्ण तरीके से मौजूद थीं, वे साम्प्रदायिक रूप से आवेशित माहौल में तनाव के रूप में सामने आईं। दिसम्बर, 1923 में दास ने समझौते पर हस्ताक्षर, जिसे आमतौर पर मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने स्वागत किया और बंगाल में मुस्लिम समर्थन हासिल करने के तरीकों के रूप में देखा, कलकत्ता में इसका उतना प्रभाव नहीं पड़ा। स्वराज पार्टी को कलकत्ता में मुस्लिम मतदाताओं के बीच संघर्ष करना पड़ा। जीतने वाले मुस्लिम उम्मीदवार–हुसैन सुहरावर्दी और महवूव एली–धनी परिवारों

से थे, और साथ मिलकर उन्होंने 1,359 वोटों में से 856 वोट हासिल किए, जबकि फजल-उल-हक और रेजानुर खान जैसे अन्य उदारवादी मुस्लिम नेताओं को केवल 139 वोट मिले। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक विभाजन बना रहा, और स्वराज पार्टी के चुनाव अभियान ने भी इसमें योगदान दिया, विशेष रूप से 'गौ माता की जय' के नारे के माध्यम से, जो मारवाड़ी और देश के दूर-दराज के हिन्दुओं की भावनाओं को गौहत्या के बारे में बताता था।

इस अवधि के दौरान छविनाथ पांडे की राजनीतिक दिशा मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। बनारस में शिक्षित और राष्ट्रवादी आन्दोलन से गहराई से प्रभावित पांडे ने शुरू में लोकमान्य तिलक और गांधी के नेतृत्व से प्रेरित होकर कांग्रेस में शामिल हुए। हालाँकि, खिलाफत आन्दोलन के कमजोर पड़ने और साम्प्रदायिक दंगों के बढ़ने के बाद, विशेष रूप से कोहाट दंगों के बाद, उनके विचार बदल गए। उनकी हिन्दुत्ववादी विचारधारा उभरी, और उन्होंने हिन्दू सभा में शामिल होने के लिए कांग्रेस छोड़ दी। 1924 में, वे कलकत्ता में हिन्दू महासभा सम्मेलन के आयोजन में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए, जिसकी अध्यक्षता लाला लाजपत राय ने की। पांडे ने टीटागढ़, खरदह, नैहाटी और तेलिनिपाड़ा जैसे मिल क्षेत्रों में हिन्दुओं को संगठित करने पर ध्यान केन्द्रित किया, ताकि साम्प्रदायिक झड़पों को रोका जा सके। हालाँकि, उनके प्रयासों के बावजूद, कुछ क्षेत्रों में अभी भी दंगे हुए। उदाहरण के लिए, मटियाबुर्ज दंगों के दौरान, पांडे ने महसूस किया कि गांधी की टिप्पणी हिन्दुओं को अशान्ति के लिए दोषी ठहराना अनुचित था। उन्होंने दंगे के लिए कैद किए गए दो सौ हिन्दुओं की मदद करने के लिए काम किया, उन्हें और उनके परिवारों की सहायता के लिए धन जुटाया, अन्ततः उनमें से अधिकांश को बरी करवाया।

टीटागढ़ और नैहट्टी जैसे क्षेत्रों में पांडे के काम और नेतृत्व ने उन्हें गांधी के समक्ष हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने वाले एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में स्थापित किया। उनकी गतिविधियों में बढ़ते साम्प्रदायिक तनाव भी झलकते थे, जिसमें मस्जिदों के सामने संगीत बजाना और महाबीरी झंडा उत्सव जैसे मुद्दे विवाद का विषय बन गए थे। मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसी हस्तियों की उनकी आलोचना और हिन्दू हितों की रक्षा के उनके प्रयास, जिसमें युवा लड़की कबूतरी के मामले में उनकी भागीदारी भी शामिल है, जिसे मुसलमानों ने निशाना बनाया था, हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधाराओं के साथ उनके जुड़ाव का उदाहरण है।

1926 के दंगों ने उस समय की राजनीतिक गतिशीलता में एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित किया। मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में फँसे हिन्दुओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने में मारवाड़ी सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण थी। घनश्यामदास बिड़ला, ओमकारमल सराफ, रामकुमार भुवालका और प्रभुदयाल जैसे नेता और व्यवसायी प्रमुख व्यक्ति बन गए, जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से हिन्दुओं को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। 1926 के दंगों के अनुभवों ने मारवाड़ियों और अन्य हिन्दुओं को सिखाया कि दंगों की स्थिति में संगठनात्मक ताकत मायने रखती है, और इससे शहर में उनके राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव को मजबूत करने में मदद मिली।

इन दंगों ने साम्प्रदायिक विचारधाराओं के प्रचार के लिए भी जगह बनाई, क्योंकि नेताओं ने इस स्थिति का इस्तेमाल समुदायों के बीच सामाजिक विभाजन को और मजबूत करने के लिए किया, जो दंगों के बाद भी जारी रहा। खिलाफत आन्दोलन के पतन के बाद, कलकत्ता में एक नई राजनीतिक सक्रियता उभरी, जिसमें चितरंजन दास एक प्रमुख नेता बन गए। उनका उद्देश्य हिन्दी भाषी लोगों को राजनीति और सामाजिक जीवन में शामिल करना था और उन्होंने

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका को अपने अखबार फॉरवर्ड के सम्पादकीय बोर्ड में नियुक्त किया। 1923 में, घनश्यामदास बिड़ला ने बंगाली अखबार का अधिग्रहण किया और हिम्मतसिंहका को इसका सम्पादक बनाया। हिम्मतसिंहका ने अखबार को अच्छे से प्रबंधित किया, लेकिन ईस्ट इंडिया रेलवे से जुड़े एक कानूनी मामले के कारण, जिसमें डेढ़ लाख रुपये का जुर्माना जारी किया गया था, उन्हें अखबार का नाम बदलकर लिबर्टी करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

कलकत्ता में कांग्रेस की राजनीति में बड़ा बाजार का बढ़ता महत्व मुख्य रूप से इस क्षेत्र से मिलने वाले महत्वपूर्ण वित्तीय योगदान के कारण था, जैसे तिलक स्वराज कोष में एक लाख रुपये का दान। 1924 के नगरपालिका चुनावों में, चितरंजन दास, जो महापौर बने, को स्थानीय मारवाड़ियों के विरोध का सामना करना पड़ा, जो सर बद्रीनाथ गोयनका के लिए एक सीट आरक्षित करना चाहते थे। दास ने तीन कांग्रेस उम्मीदवारों को मैदान में उतारने का फैसला किया, जिसके कारण मारवाड़ी समुदाय ने बहिष्कार किया। कई कांग्रेस समर्थकों के पीछे हटने के बावजूद, हिम्मतसिंह की चितरंजन दास के प्रति वफादारी कायम रही। चुनावों के दौरान, जब मारवाड़ी समर्थकों ने अपना समर्थन वापस ले लिया, तो छविनाथ पांडे ने बताया कि कैसे देशबंधु ने मतदाताओं के परिवहन के लिए 25 कारों की व्यवस्था की, जिससे चुनाव अभियान सुचारू रूप से आगे बढ़ सका।

कलकत्ता के हिन्दी अखबारों की समकालीन रिपोर्ट से पता चलता है कि हिन्दी भाषी लोगों ने कांग्रेस का पुरजोर समर्थन किया, खासकर गांधी के प्रति उनके आकर्षण के कारण। हालांकि, 1920 के दशक की शुरुआत तक इस समर्थन को अक्सर हिन्दू राष्ट्रवाद से जोड़ा जाता था। जिस सहजता से लोग कांग्रेस और हिन्दू महासभा के बीच अपनी वफादारी बदलते थे, उससे दोनों विचारधाराओं के बीच एक सम्बन्ध का पता चलता है।

कलकत्ता में हिन्दी अखबारों और पत्रिकाओं ने एक नई राष्ट्रीय पहचान के अपने दृष्टिकोण में एक रूढ़िवादी हिन्दू वैचारिक ढांचे की मजबूत उपस्थिति को उजागर किया। हालांकि, कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय विचारधारा अन्ततः हिन्दी भाषी लोगों के बीच प्रमुख राजनीतिक ताकत बन गई। प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका जैसे नेताओं ने कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया, जिसने 1920 के दशक को एक ऐसे दौर के रूप में चिह्नित किया, जब गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद भारत के नए राष्ट्र के लिए परिभाषित विचारधारा बन गया। हालांकि हिन्दी भाषी समुदाय के कई लोग वैचारिक रूप से हिन्दू संगठनों के करीब थे और हिन्दू हितों की रक्षा के लिए सक्रिय रूप से काम करते थे, फिर भी कांग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए उनका समर्थन अडिग था। साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय विचारधाराएँ अक्सर आपस में जुड़ी हुई थीं, लेकिन यह कहना गलत होगा कि हिन्दी भाषी लोग कलकत्ता में प्रगतिशील राजनीतिक आन्दोलनों से अप्रभावित थे।

कोलकाता के हिन्दी भाषी समाज के इतिहास पर और अधिक शोध कार्य की जरूरत है।

□

हितेन्द्र पटेल : प्राध्यापक, इतिहास विभाग, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, 56ए, बैरकपुर ट्रंक रोड, कोलकाता-700050
मोबाइल : 9836450033

शत्रुघ्न काहार : 857, उपाध्याय नवीन बाबू रोड, गारूलिया, नोआपाड़, उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल-743133